

Chapter अड़तालीस

कृष्ण द्वारा अपने भक्तों की तुष्टि

इस अध्याय में बतलाया गया है कि श्रीकृष्ण सर्वप्रथम त्रिवक्रा (जो कुब्जा भी कहलाती थी) के यहाँ जाते हैं और उसके साथ संभोग करते हैं। तत्पश्चात् अक्रूर के यहाँ जाते हैं। भगवान् पाण्डवों को प्रसन्न करने के लिए अक्रूर को हस्तिनापुर भेजते हैं।

जब उद्धव ने आकर श्रीकृष्ण से व्रज के समाचार बतला दिये तो भगवान् त्रिवक्रा के घर गये जो संभोग-सुख के उपयुक्त विविध अलंकारों से सजाया गया था। त्रिवक्रा ने बड़े ही आदर के साथ कृष्ण का स्वागत किया, उन्हें उच्च आसन दिया और अपनी सखियों के साथ उनकी पूजा की। उसने उद्धव को भी उनके पद के अनुसार आसन दिया किन्तु उद्धव ने उसका केवल स्पर्श ही किया और फिर जमीन पर बैठ गये।

तब श्रीकृष्ण ऐश्वर्यशाली शय्या में लेट गये और दासी त्रिवक्रा ने अपने को खूब सजाया-सँवारा था। तत्पश्चात् वह उनके पास आई। कृष्ण ने त्रिवक्रा को शय्या में बुलाया और विविध प्रकार से उसके साथ रमण किया। कृष्ण का आलिंगन पाकर त्रिवक्रा काम-पीड़ा से मुक्त हो गई। उसने कृष्ण से कुछ काल तक रहने के लिए कहा और सबका मन रखने वाले भगवान् ने कालान्तर में उसकी प्रार्थना को पूरा करने का वचन दिया। तत्पश्चात् वे उद्धव सहित अपने घर लौट आये। त्रिवक्रा ने कृष्ण को चन्दन-लेप अर्पित करने के अलावा कभी कोई अन्य पवित्र कर्म नहीं किया था फिर भी इस एकमात्र कर्म की पवित्रता के बल पर उसने श्रीकृष्ण की दुर्लभ संगति प्राप्त की।

इसके बाद श्रीकृष्ण बलदेव तथा उद्धव समेत अक्रूर के घर गये। अक्रूर ने तीनों को नमस्कार करने के बाद उपयुक्त आसन प्रदान करते हुए उनका सम्मान किया। तत्पश्चात् उसने राम तथा कृष्ण की पूजा की, उनके चरण पखारे और उस जल को सिर पर धारण किया। अक्रूर ने भी उनकी अनेक प्रकार से स्तुतियाँ कीं।

भगवान् कृष्ण अक्रूर की स्तुतियों से प्रसन्न थे। उन्होंने उनसे कहा कि चूँकि आप हमारे चाचा (ताऊ) लगते हैं अतः कृष्ण तथा बलराम को उनका संरक्षण तथा अनुग्रह मिलते रहना चाहिए। तत्पश्चात् कृष्ण ने अक्रूर की प्रशंसा एक सन्त तथा पापियों को पवित्र करने वाले के रूप में की और उनसे कहा कि वे हस्तिनापुर जाकर पता लगायें कि अपने पिता से वंचित होकर पाण्डव किस तरह रह रहे हैं। अन्त में कृष्ण बलराम तथा उद्धव को अपने साथ लेकर अपने घर लौट आये।

श्रीशुक उवाच

अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।

सैरन्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तब; विज्ञाय—जानकर; भगवान्—भगवान्; सर्व—सबों के; आत्मा—आत्मा; सर्व—सबों के; दर्शनः—द्रष्टा; सैरन्याः—सेवा करने वाली लड़की त्रिवक्रा के; काम—कामवासना से; तप्तायाः—संतप्त; प्रियम्—तुष्टि; इच्छन्—चाहने वाली; गृहम्—घर; ययौ—गये।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : उद्धव के सन्देश को आत्मसात करने के बाद समस्त प्राणियों के सर्वज्ञ आत्मा भगवान् कृष्ण ने सेवा करने वाली लड़की त्रिवक्रा को तुष्ट करना चाहा जो कामवासना से पीड़ित थी। अतः वे उसके घर गये।

तात्पर्य : इस श्लोक से भगवान् की लीलाओं की एक रोचक झाँकी प्राप्त होती है। प्रथम पद में कहा गया है *अथ विज्ञाय भगवान्* “(उद्धव की सूचना) को जान लेने के बाद भगवान् इस तरह...।” द्वितीय पद में कहा गया है कि भगवान् कृष्ण *सर्वात्मा* और *सर्वदर्शनः* हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि वे दूतों के द्वारा कही गई खबरों पर आश्रित नहीं हैं किन्तु वे मनुष्य की तरह कार्य करते हैं और दूत का सन्देश सुनते हैं इसलिए नहीं कि उन्हें आवश्यकता है जैसा हम लोग करते हैं अपितु अपने शुद्ध-भक्त से प्रेम का आदान-प्रदान करने की अपनी दिव्य लीला के आनंद के कारण वे ऐसा करते हैं। *सर्वदर्शनः* शब्द यह भी बताता है कि भगवान् ब्रज के वासियों की भावनाओं को पूरी तरह समझते थे और मन ही मन

आदान-प्रदान कर रहे थे। अपनी बहिरंगा लीलाओं में वे श्रीमती त्रिवक्रा को आशीर्वाद देना चाहते थे क्योंकि उन्हें उसे भौतिक काम के रोग से मुक्त करना था।

महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ।
मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः ।
धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

महा-अर्ह—महँगे; उपस्करैः—साज-सामान से; आढ्यम्—सम्पन्न; काम—कामवासना का; उपाय—साज-सामान; उपबृंहितम्—भरा-पुरा; मुक्ता-दाम—मोतियों की लड़ियों से; पताकाभिः—तथा झंडों से; वितान—चँदोवों से; शयन—पलँग; आसनैः—तथा आसनों से; धूपैः—अगुरु से; सुरभिभिः—सुगन्धित; दीपैः—दीपकों से; स्रक्—फूल की मालाओं से; गन्धैः—तथा सुगन्धित चन्दन-लेप से; अपि—भी; मण्डितम्—सजाया हुआ।

त्रिवक्रा का घर ऐश्वर्ययुक्त साज-सामान से बड़ी शान से सजाया हुआ था और कामोत्तेजना उभाड़ने वाली साज-सामग्री से भरा-पूरा था। उसमें झंडियाँ, मोती की लड़ें, चँदोवा, सुन्दर सेज तथा बैठने के आसन थे और सुगन्धित अगुरु, दीपक, फूल-मालाएँ तथा सुगन्धित चन्दन-लेप भी था।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार त्रिवक्रा के घर में कामोत्तेजक साज-सामग्री में विशिष्ट तरह के कामवासना सम्बन्धी चित्र भी थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि उसकी साज-सामग्री में कामोत्तेजक जड़ी-बूटियाँ भी थीं। इन सबसे त्रिवक्रा के मनोभाव का अनुमान लगाना कठिन नहीं है। फिर भी भगवान् कृष्ण उसे भौतिक जगत से बचाने के लिए गये।

गृहं तमायान्तमवेक्ष्य सासनात्
सद्यः समुत्थाय हि जातसम्भ्रमा ।
यथोपसङ्गम्य सखीभिरच्युतं
सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

गृहम्—अपने घर पर; तम्—उसको; आयान्तम्—आया हुआ; अवेक्ष्य—देखकर; सा—वह; आसनात्—आसन से; सद्यः—तुरन्त; समुत्थाय—उठकर; हि—निस्सन्देह; जात-सम्भ्रमा—हड़बड़ाकर; यथा—समुचित ढंग से; उपसङ्गम्य—आगे आकर; सखीभिः—अपनी सखियों सहित; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण को; सभाजयाम् आस—आदरपूर्वक सत्कार किया; सत्-आसन—उत्तम आसन; आदिभिः—इत्यादि से।

जब त्रिवक्रा ने उन्हें अपने घर की ओर आते देखा तो वह हड़बड़ाकर तुरन्त ही अपने आसन से उठ खड़ी हुई। अपनी सखियों समेत आगे आकर उसने भगवान् अच्युत को उत्तम आसन तथा

पूजा की अन्य सामग्रियाँ अर्पित करते हुए उनका सत्कार किया ।

तथोद्धवः साधुतयाभिपूजितो
 न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ।
 कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं
 विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तथा—भी; उद्धवः—उद्धव; साधुतया—साधु-पुरुष की तरह; अभिपूजितः—पूजित; न्यषीदत्—बैठ गये; उर्व्याम्—जमीन पर; अभिमृश्य—स्पर्श करके; च—तथा; आसनम्—आसन का; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; अपि—तथा; तूर्णम्—अविलम्ब; शयनम्—सेज पर; महा-धनम्—अत्यन्त वैभवशाली; विवेश—लेट गये; लोक—मानव समाज का; आचरितानि—आचरणों का; अनुव्रतः—अनुकरण करते हुए ।

उद्धव को भी सम्मानयुक्त आसन प्राप्त हुआ। चूँकि वे साधु सदृश पुरुष थे अतः उन्होंने उसका स्पर्श ही किया और फिर फर्श पर बैठ गये। तब भगवान् कृष्ण मानव समाज के आचारों (लोकाचार) का अनुकरण करते हुए ऐश्वर्यशाली शय्या पर लेट गये।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार उद्धव अपने स्वामी के प्रति सम्मान व्यक्त करने की दृष्टि से उनके समक्ष ऐश्वर्यशाली आसन पर नहीं बैठे प्रत्युत उसे अपने हाथ से छुआ और फर्श पर बैठ गये। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि भगवान् कृष्ण त्रिवक्रा के घर के भीतरी कक्ष में स्थित शय्या पर लेटे।

सा मज्जनालेपदुकूलभूषण-
 स्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः ।
 प्रसाधितात्मोपससार माधवं
 सत्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सा—वह, त्रिवक्रा; मज्जन—स्नान करके; आलेप—लेप लगाकर; दुकूल—सुन्दर वस्त्र पहनकर; भूषण—आभूषणों से; स्रक्—मालाओं से; गन्ध—सुगन्ध; ताम्बूल—पान; सुधा-आसव—सुगन्धित पेय; आदिभिः—आदि से; प्रसाधित—तैयार किया; आत्मा—अपना शरीर; उपससार—पास आई; माधवम्—भगवान् कृष्ण के; स-त्रीड—सलज्ज; लीला—खिलवाड़-भरी, लीलामयी; उत्स्मित—अपनी हँसी का; विभ्रम—लुभाने वाली; ईक्षितैः—चितवनों से।

त्रिवक्रा नहाकर, अपने शरीर में लेप लगाकर तथा सुन्दर वस्त्र पहनकर और तब आभूषण और मालाएँ पहन कर और सुगन्ध लगाने के बाद पान-सुपारी चबाकर और सुगन्धित पेय पीकर तैयार हुई। तब वह लजीली, लीलामयी हँसी तथा लुभाने वाली चितवनों से माधव के पास पहुँची।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि हजारों वर्षों के बाद भी स्त्रियों द्वारा काम-भोग की तैयारी की

विधियों में कोई परिवर्तन नहीं आया।

आहूय कान्तां नवसङ्गमहिया
विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे ।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया
रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

आहूय—बुलाकर; कान्ताम्—अपनी प्रियतमा को; नव—नवीन; सङ्गम—संसर्ग का; हिया—लाज से युक्त; विशङ्किताम्—सशंकित; कङ्कण—चूड़ियों से; भूषिते—आभूषित; करे—दोनों हाथों में; प्रगृह्य—पकड़े; शय्याम्—सेज पर; अधिवेश्य—बैठकर; रामया—सुन्दरी स्त्री के साथ; रेमे—रमण किया; अनुलेप—लेप का; अर्पण—अर्पण; पुण्य—पवित्रता का; लेशया—तनिक भी।

इस नवीन सम्पर्क (मिलन) की प्रत्याशा से सशंकित तथा लजीली प्रेमिका को आगे आने के लिए बुलाते हुए भगवान् ने कंगन से सुशोभित उसके हाथों को पकड़कर अपनी सेज पर खींच लिया। इस तरह उन्होंने उस सुन्दरी के साथ रमण किया जिसकी एकमात्र पवित्रता इतनी ही थी कि उसने पहले किसी समय भगवान् को लेप अर्पित किया था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की व्याख्या है कि *नवसंगमहिया* शब्द सूचित करते हैं कि त्रिवक्रा अभी तक कुमारी थी। वह कुबड़ी थी और भगवान् ने उसे हाल ही में सुन्दर बाला का रूप प्रदान किया था। अतः वह श्रीकृष्ण पर कामासक्त तो थी किन्तु सहज भाव से वह लजीली तथा सशंकित थी।

सानङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णो-
जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती ।
दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्त-
मानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

स—वह; अनङ्ग—कामदेव द्वारा; तप्त—जलती हुई; कुचयोः—अपने स्तनों के; उरसः—अपनी छाती के; तथा—और; अक्ष्णोः—अपनी आँखों के; जिघ्रन्ती—सूँघती; अनन्त—अनन्त भगवान् कृष्ण के; चरणेन—चरणों से; रुजः—पीड़ा; मृजन्ती—पोंछती हुई; दोर्भ्याम्—अपनी बाहुओं से; स्तन—स्तनों के; अन्तर-गतम्—बीच; परिरभ्य—आलिगन करके; कान्तम्—प्रेमी को; आनन्द—समस्त आनन्द की; मूर्तिम्—साक्षात् अभिव्यक्तिको; अजहात्—त्याग दिया; अति—अत्यधिक; दीर्घ—दीर्घकालीन; तापम्—कष्ट को।

भगवान् के चरणकमलों की सुगन्धि से ही त्रिवक्रा ने अपने स्तनों, छाती तथा आँखों में कामदेव द्वारा उत्पन्न जलती हुई कामवासना को धो दिया। अपनी दोनों बाँहों से उसने अपने स्तनों

के मध्य स्थित अपने प्रेमी श्रीकृष्ण का आलिंगन किया जो आनन्द की मूर्ति हैं और इस तरह उसने अपने दीर्घकालीन व्यथा को त्याग दिया।

सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्राप्यमीश्वरम् ।
अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

स—उसने; एवम्—इस प्रकार; कैवल्य—मुक्ति के; नाथम्—नियन्ता; तम्—उस; प्राप्य—प्राप्त करके; दुष्प्राप्यम्—प्राप्त न हो सकने वाले; ईश्वरम्—भगवान् को; अङ्ग-राग—शरीर का लेप; अर्पणेन—प्रदान करने से; अहो—ओह; दुर्भगा—अभागी; इदम्—यह; अयाचत—उसने माँगा।

केवल शरीर का लेप प्रदान करने से ही अलभ्य भगवान् को इस प्रकार पाकर उस अभागी त्रिवक्रा ने स्वतंत्रता (मोक्ष) के उन स्वामी से निम्नलिखित याचना की।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार श्रीमती त्रिवक्रा ने भगवान् से प्रार्थना की, “कृपया एकमात्र मेरे साथ रमण करें, अन्य किसी स्त्री से नहीं।” चूँकि कृष्ण ऐसा वर देने को राजी न थे इसलिए त्रिवक्रा को अभागी कहा गया है। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि यद्यपिसामान्य दृष्टि से वह भौतिक काम-सुख की याचना करती प्रतीत हो रही थी, किन्तु वास्तव में वह अब तक मुक्तात्मा हो चुकी थी।

सहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ।
रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सह—साथ में; उष्यताम्—ठहरें; इह—यहाँ; प्रेष्ठ—हे प्रिय; दिनानि—दिन; कतिचित्—कुछ; मया—मेरे साथ; रमस्व—रमण करें; न उत्सहे—सहन नहीं कर सकती; त्यक्तुम्—छोड़ पाना; सङ्गम्—साथ; ते—तुम्हारा; अम्बुरुह-ईक्षण—हे कमल-नेत्र।

[त्रिवक्रा ने कहा] : हे प्रियतम! आप यहाँ पर मेरे साथ कुछ दिन और रुकें और रमण करें। हे कमल-नेत्र! मैं आपका साथ छोड़कर नहीं रह सकती।

तात्पर्य : अम्बु का अर्थ है “जल” और रुह का अर्थ है “उठते हुए।” इस तरह अम्बुरुह का अर्थ है “जल से ऊपर उठने वाला, कमल का फूल।” भगवान् कृष्ण अम्बुरुहेक्षण “कमलनेत्र” कहलाते हैं। वे समस्त सौन्दर्य के स्रोत तथा मूर्ति हैं इसीलिए स्वाभाविक था कि त्रिवक्रा उनके प्रति आकृष्ट थी। किन्तु भगवान् का सौन्दर्य आध्यात्मिक एवं विशुद्ध है और उनका मन्तव्य त्रिवक्रा के साथ अपनी तृप्ति करना नहीं था अपितु उसे शुद्ध कृष्णभावनामृत तक ले आना था।

तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः ।

सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदृद्धिमत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तस्यै—उसको; काम—भौतिक इच्छा का; वरम्—वर; दत्त्वा—देकर; मानयित्वा—अपना आदर दिखलाकर; च—तथा; मान-दः—अन्यों का आदर करने वाले; सह उद्धवेन—उद्धव के साथ; सर्व-ईशः—सभी जीवों के प्रभु; स्व—अपने; धाम—वासस्थान; अगमत्—चले गये; ऋद्धि-मत्—अत्यन्त समृद्धिवान् ।

इस काम-इच्छा को पूरा करने का वचन देकर, समस्त जीवों के स्वामी, सबका मान रखने वाले कृष्ण ने त्रिवक्रा का अभिवादन किया और तब उद्धव समेत अपने अत्यन्त समृद्धिशाली धाम को लौट आये ।

तात्पर्य : सारे आचार्य मानते हैं कि कामवरं दत्त्वा शब्द यह सूचित करता है कि कृष्ण ने त्रिवक्रा को वचन दिया कि वे उसकी कामेच्छाओं को पूरा करेंगे ।

दुराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।

यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दुराध्यम्—विरले ही पूजित; समाराध्य—पूरी तरह पूजा करके; विष्णुम्—विष्णु की; सर्व—सबों के; ईश्वर—नियन्ता के; ईश्वरम्—परम नियन्ता; यः—जो; वृणीते—वर के रूप में चुनता है; मनः—मन तक; ग्राह्यम्—पहुँच रखने वाला, अर्थात् इन्द्रिय तृप्ति; असत्त्वात्—तुच्छता के कारण; कुमनीषी—बुद्धिहीन; असौ—वह व्यक्ति ।

सामान्यतया समस्त ईश्वरों के परम ईश्वर भगवान् विष्णु तक पहुँच पाना कठिन है। अतः जो व्यक्ति उनकी समुचित पूजा करने के बाद उनसे इन्द्रियतृप्ति का वर माँगता है, वह निश्चित रूप से कम बुद्धि वाला (दुर्बुद्धि) है क्योंकि वह तुच्छ फल से तुष्ट हो जाता है ।

तात्पर्य : आचार्यों की टीकाओं से यह स्पष्ट है कि त्रिवक्रा की कथा को दो स्तरों पर समझना होगा। एक ओर भगवान् की प्रत्यक्ष संगति एवं उनकी लीलाओं में भाग लेने के कारण वह मुक्तात्मा मानी जाती है, तो दूसरी ओर उसका आचरण यह शिक्षा प्रदान करने के निमित्त प्रस्तुत हुआ है कि कृष्ण का साथ होने पर क्या नहीं करना चाहिए। चूँकि कृष्ण की सारी लीलाएँ न केवल आनन्दमय हैं अपितु उपदेशात्मक हैं अतः इस लीला में कोई वास्तविक विरोध नहीं है क्योंकि त्रिवक्रा की पवित्रता तथा उसका बुरा उदाहरण दो भिन्न स्तरों पर उपस्थित होते हैं। अर्जुन भी शुद्ध-भक्त माना जाता है फिर भी प्रारम्भ में युद्ध करने की कृष्ण की आज्ञा का उल्लंघन करके उसने भी जो नहीं करना चाहिए

उसका उदाहरण प्रस्तुत किया। किन्तु ऐसे बुरे उदाहरणों का अन्त सदा सुखमय होता है परम सत्य कृष्ण के आनन्दमय सान्निध्य में।

अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ।
किञ्चित्चिकीर्षयन्प्रागादक्रूरप्रीयकाम्यया ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अक्रूर-भवनम्—अक्रूर के घर; कृष्णः—कृष्ण के; सह—साथ; राम-उद्धवः—बलराम तथा उद्धव; प्रभुः—परमेश्वर; किञ्चित्—कुछ-कुछ; चिकीर्षयन्—कराने की इच्छा से; प्रागात्—गये; अक्रूर—अक्रूर की; प्रिय—तुष्टि; काम्यया—इच्छा से।

तत्पश्चात् भगवान् कृष्ण कुछ कार्य कराने की इच्छा से अक्रूर के घर बलराम और उद्धव के साथ गये। भगवान् अक्रूर को भी तुष्ट करना चाहते थे।

तात्पर्य : त्रिवक्रा के घर भगवान् के जाने की पिछली घटना और अब अक्रूर के घर जाना ये मथुरा नगरी में श्रीकृष्ण की दैनिक-चर्याओं की मनोहर झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

स तान्नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबान्धवान् ।
प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ १३ ॥
ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ।
पूजयामास विधिवत्कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (अक्रूर); तान्—उनको (कृष्ण, बलराम तथा उद्धव को); नर-वर—श्रेष्ठ पुरुषों में; श्रेष्ठान्—सबसे बड़ा; आरात्—दूर से; वीक्ष्य—देखकर; स्व—अपने (अक्रूर के); बान्धवान्—सम्बन्धियों को; प्रत्युत्थाय—उठकर; प्रमुदितः—प्रसन्न; परिष्वज्य—आलिंगन करके; अभिनन्द्य—स्वागत करके; च—तथा; ननाम—नमस्कार किया; कृष्णम् रामम् च—कृष्ण तथा बलराम को; सः—वह; तैः—उनके द्वारा; अपि—तथा; अभिवादितः—स्वागत किया; पूजयाम् आस—पूजा की; विधि-वत्—शास्त्रीय आदेशों के अनुसार; कृत—किया हुआ; आसन—बैठने के आसनों का; परिग्रहान्—स्वीकार करना।

जब अक्रूर ने अपने ही सम्बन्धियों एवं पुरुष शिरोमणियों को दूर से आते देखा तो वे हर्षपूर्वक उठकर खड़े हो गये। उनको गले मिलने आलिंगन और स्वागत करने के बाद अक्रूर ने कृष्ण और बलराम को नमस्कार किया और बदले में उन दोनों ने उनका अभिवादन किया। फिर जब उनके अतिथि आसन ग्रहण कर चुके तो उन्होंने शास्त्रीय नियमों के अनुसार उनकी पूजा की।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी संकेत करते हैं कि श्रीकृष्ण तथा अन्य लोग मित्र के रूप में अक्रूर के पास पहुँचे थे। सर्वप्रथम अक्रूर ने बदले में मित्र-भाव प्रदर्शित किया और तब आतिथ्य करते हुए

उन्होंने भगवान् की ओर स्वाभाविक भक्ति-भाव दर्शाया और श्रीकृष्ण तथा बलराम को सादर नमस्कार किया।

पादावनेजनीरापो धारयन्शिरसा नृप ।
अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्त्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥
अर्चित्वा शिरसानम्य पादावङ्कगतौ मृजन् ।
प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

पाद—उनके पाँव; अवनेजनी—स्नान के काम आने वाला; आ—सर्वत्र; आपः—जल; धारयन्—धारण करते हुए; शिरसा—सिर पर; नृप—हे राजा (परीक्षित); अर्हणेन—भेंटों से; अम्बरैः—वस्त्रों से; दिव्यैः—स्वर्गिक; गन्ध—सुगन्धित चन्दन का लेप; स्त्रक्—फूल-मालाएँ; भूषण—तथा आभूषण; उत्तमैः—उत्तम; अर्चित्वा—पूजा करके; शिरसा—सिर के बल; आनम्य—झुकाकर; पादौ—(कृष्ण के) पाँव; अङ्क—अपनी गोद में; गतौ—रख लिए; मृजन्—दबाते हुए; प्रश्रय—दीनतापूर्वक; अवनतः—सिर झुकाकर; अक्रूरः—अक्रूर; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम से; अभाषत—बोला।

हे राजन्, अक्रूर ने भगवान् कृष्ण तथा बलराम के चरण पखारे और तब उस चरणोदक को अपने सिर पर छिड़का। उन्होंने उन दोनों को उत्तम वस्त्र, सुगन्धित चन्दन-लेप, फूल-मालाएँ तथा उत्तम आभूषण भेंट में दिये। इस तरह दोनों विभुओं की पूजा करने के बाद उन्होंने अपने शिर से फर्श को स्पर्श करके नमस्कार किया। फिर वे कृष्ण के चरणों को अपनी गोद में लेकर दबाने लगे और नम्रभाव से अपना सिर नीचे किये कृष्ण तथा बलराम से इस प्रकार बोले।

दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ।
भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्रादुरन्ताच्च समेधितम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्य से; पापः—पापी; हतः—मारा गया; कंसः—कंस; स-अनुगः—अपने भाइयों तथा अन्य अनुयायियों सहित; वाम्—आपके; इदम्—इस; कुलम्—वंश को; भवद्भ्याम्—आप दोनों के द्वारा; उद्धृतम्—उद्धार किया गया; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; दुरन्तात्—अन्तहीन; च—तथा; समेधितम्—सम्पन्न बनाया।

[अक्रूर ने कहा] : यह तो हमारा सौभाग्य है कि आप दोनों ने दुष्ट कंस तथा उसके अनचरों का वध कर दिया है। इस तरह आपने अपने वंश को अन्तहीन कष्ट से उबारकर उसे समृद्ध बनाया है।

युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ।
भवद्भ्यां न विना किञ्चित्परमस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

युवाम्—तुम दोनों; प्रधान-पुरुषो—आदि-पुरुषों ने; जगत्—ब्रह्माण्ड के; हेतू—कारण; जगत्-मयौ—ब्रह्माण्ड से अभिन्न; भवद्भ्याम्—आपकी अपेक्षा; न—नहीं; विना—के अतिरिक्त; किञ्चित्—कुछ भी; परम्—कारण; अस्ति—है; न च—न तो; अपरम्—फल।

आप दोनों आदि परम पुरुष, ब्रह्माण्ड के कारण तथा इसके सार हैं। जरा सा भी सूक्ष्म कारण या सृष्टि की कोई भी अभिव्यक्ति आपसे पृथक् नहीं रह सकती।

तात्पर्य : अपने वंश की रक्षा करने के लिए कृष्ण तथा बलराम की प्रशंसा करने के बाद अक्रूर यह बतलाते हैं कि भगवान् का किसी सामाजिक संस्था या राजनीतिक संस्था से कोई भौतिक सम्बन्ध नहीं है। वे आदि-भगवान् हैं और समग्र ब्रह्माण्ड के लाभ हेतु अपनी लीलाएँ सम्पन्न करते हैं।

आत्मसृष्टिमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ।

ईयते बहुधा ब्रह्मन्श्रु तप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

आत्म-सृष्टम्—आपके द्वारा सृजित; इदम्—यह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; अन्वाविश्य—बाद में प्रवेश करके; स्व—अपनी; शक्तिभिः—शक्तियों से; ईयते—अनुभव किये जाते हो; बहुधा—विविध; ब्रह्मन्—हे परब्रह्म; श्रुत—शास्त्रों से सुनकर; प्रत्यक्ष—तथा प्रत्यक्ष अनुभूति से; गोचरम्—ज्ञेय।

हे परम सत्य आप अपनी निजी शक्तियों से इस ब्रह्माण्ड का सृजन करते हैं और तब उसमें प्रवेश करते हैं। इस तरह महाजनों से सुनकर तथा प्रत्यक्ष अनुभव करके मनुष्य आपको अनेक विभिन्न रूपों में अनुभव कर सकता है।

तात्पर्य : श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् तथा आत्मसृष्टिमिदं विश्वम् में नपुंसक लिंग का जो व्याकरणिक साम्य है। उससे सूचित होता है कि भगवान् अपनी शक्तियों द्वारा अपनी सृष्टि में प्रविष्ट होकर ब्रह्माण्ड के भीतर अपने को ज्ञेय बनाते हैं। भागवत में तथा अन्य प्रामाणिक वैदिक साहित्य में हमें भगवान् के प्रायः तमाम विवरण मिलते हैं जिनमें अन्य सारी वस्तुओं से उनकी श्रेष्ठता तथा उनसे अभिन्नता देखी जाती है। हम वैदिक साहित्य से यदि कोई निष्कर्ष निकाल सकते हैं, तो वह यही है, जिसका उपदेश श्री चैतन्य महाप्रभु ने दिया वह है अचिन्त्य भेदाभेदतत्त्व। अर्थात् परम सत्य हर वस्तु से बड़े और पृथक् हैं (क्योंकि वे सर्वशक्तिमान स्रष्टा तथा सबों के नियन्ता हैं) और उसी के साथ साथ हर वस्तु से एकाकार हैं (क्योंकि जो कुछ भी विद्यमान है, वह उनकी शक्ति का विस्तार है)।

हमें भी श्रीमद्भागवत के इन सारे अध्यायों में इस महान् ग्रंथ की एक अद्वितीय असाधारण

विशेषता दिखती है। कृष्ण चाहे गोपियों के पास सन्देश भेज रहे हों या अक्रूर की प्रार्थना स्वीकार कर रहे हों इन सब में निरन्तर दार्शनिक बातचीत चलती है। पूरे *भागवत* में मनोहारी लीलाओं के साथ आध्यात्मिक दर्शन का जो संगम मिलता है, वह इसकी असामान्य विशेषता है। हमें भगवान् तथा उनके मुक्त पार्षदों की आध्यात्मिक भावनाओं में झाँकने तथा उनका आस्वाद लेने की अनुमति है फिर भी हमें बारम्बार उनकी तात्त्विक स्थिति का स्मरण कराया जाता है, जिससे हम सस्ती मानववादी दृष्टिकोण में फँस न जाँय। अतः इस ग्रंथ की प्रकृति के अनुसार ही अक्रूर प्रसन्नतावश भगवान् की संक्षिप्त दार्शनिक स्तुति करते हैं।

यथा हि भूतेषु चराचरेषु
मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना ।
एवं भवान्केवल आत्मयोनि-
ष्वात्मात्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; हि—निस्सन्देह; भूतेषु—प्रकट जीवों में; चर—चेतन; अचरेषु—तथा जड़ में; मही-आदयः—पृथ्वी इत्यादि (सृष्टि के मूलभूत तत्त्व); योनिषु—योनियों में; भान्ति—प्रकट होते हैं; नाना—विविध प्रकार से; एवम्—इस तरह; भवान्—आप; केवलः—एकमात्र; आत्म—स्वयं; योनिषु—योनियों में; आत्मा—परमात्मा; आत्म-तन्त्रः—आत्म-निर्भर; बहुधा—कई प्रकार से; विभाति—प्रकट होता है।

जिस प्रकार जड़ तथा चेतन जीव-योनियों में मूलभूत तत्त्व अपने को पृथ्वी इत्यादि अनेकानेक किस्मों के रूप में प्रकट करते हैं उसी तरह आप एक स्वतंत्र परमात्मा के रूप में अपनी सृष्टि के विविधतापूर्ण पदार्थों में अनेक रूपों में प्रकट होते हैं।

सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं
रजस्तमःसत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः ।
न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा
ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

सृजसि—सृजन करते हो; अथ उ—और तब; लुम्पसि—संहार करते हो; पासि—रक्षा करते हो; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; रजः—रजो; तमः—तमो; सत्त्व—तथा सतो; गुणैः—गुणों के द्वारा; स्व-शक्तिभिः—अपनी शक्तियों से; न बध्यसे—बाँधते नहीं हो; तत्—इस जगत के; गुण—गुणों से; कर्मभिः—भौतिक कार्यकलापों द्वारा; वा—अथवा; ज्ञान-आत्मनः—साक्षात् ज्ञान हैं; ते—तुम्हारे लिए; क्व च—जहाँ कोई भी; बन्ध—बन्धन का; हेतुः—कारण।

आप अपनी निजी शक्तियों रजो, तमो तथा सतो गुणों से इस ब्रह्माण्ड का सृजन, संहार और पालन भी करते हैं। फिर भी आप इन गुणों द्वारा या इनसे उत्पन्न कर्मों द्वारा बाँधे नहीं जाते।

चूँकि आप समस्त ज्ञान के आदि-स्रोत हैं, तो फिर मोह द्वारा आपके बंधन का कारण क्या हो सकता है ?

तात्पर्य : ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः यह वाक्यांश स्पष्ट बतलाता है कि सर्वज्ञ भगवान् कभी भी मोह में नहीं रहते। इसलिए इस निर्विशेषवादी सिद्धान्त का कि हम सभी ईश्वर हैं किन्तु हम भूल चुके हैं और अब मोह में हैं, श्रीमद्भागवत के इन पृष्ठों में इसका निराकरण किया गया है।

देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्

भवो न साक्षात् भिदात्मनः स्यात् ।

अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः

स्याताम्निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

देह—शरीर; आदि—इत्यादि की; उपाधेः—उपाधियों के रूप में; अनिरूपितत्वात्—निश्चित न हो पाने से; भवः—जन्म; न—नहीं; साक्षात्—शाब्दिक; न—न तो; भिदा—द्वैत; आत्मनः—परमात्मा के लिए; स्यात्—विद्यमान है; अतः—इसलिए; न—नहीं; बन्धः—बन्धन; तव—तुम्हारा; न एव—न तो, वास्तव में; मोक्षः—मुक्ति; स्याताम्—यदि हो; निकामः—तुम्हारी स्वयं की इच्छा से; त्वयि—तुममें; नः—हमारा; अविवेकः—त्रुटिपूर्ण विवेक।

चूँकि यह कभी प्रदर्शित नहीं हुआ है कि आप भौतिक शारीरिक उपाधियों से प्रच्छन्न हैं अतः यह निष्कर्ष रूप में यह समझना होगा कि शाब्दिक अर्थ में न तो आपका जन्म होता है न ही कोई द्वैत है। इसलिए आपको बन्धन या मोक्ष का सामना नहीं करना होता। और यदि आप ऐसा करते प्रतीत होते हैं, तो यह आपकी इच्छा के कारण ही है कि हम आपको इस रूप में देखते हैं या कि हममें विवेक का अभाव है इसलिए ऐसा है।

तात्पर्य : यहाँ अक्रूर उन दो कारणों को बतलाते हैं जिससे भगवान् भौतिक स्वरूप से आच्छादित दिखते हैं या मनुष्य की तरह जन्म लेते प्रतीत होते हैं। पहला कारण जब भगवान् कृष्ण अपनी लीलाएँ सम्पन्न करते हैं, तो उनके प्रेमी भक्त उन्हें अपने प्रिय पुत्र, मित्र, प्रेमी इत्यादि के रूप में मानते हैं। इस प्रेम-विनिमय के आनन्द के कारण ही वे कृष्ण को ईश्वर नहीं मानते। उदाहरणार्थ, कृष्ण के प्रति असामान्य प्रेम के कारण ही माता यशोदा को चिन्ता होती है कि जंगल में कृष्ण को चोट लग जायेगी। वे इस तरह इसलिए अनुभव करती हैं क्योंकि भगवान् की ऐसी इच्छा होती है, जिसे यहाँ निकामः शब्द द्वारा इंगित किया गया है। दूसरा कारण जिससे भगवान् भौतिक प्रतीत होते हैं वह अविवेकः शब्द से इंगित होता है अज्ञान या अविवेक के कारण ही मनुष्य भगवान् की स्थिति को ठीक से समझ नहीं

पाता। *भागवत* के ग्यारहवें स्कन्ध में उद्धव से बातें करते हुए भगवान् कृष्ण विस्तार से बन्धन तथा मोक्ष के परे अपनी दिव्य स्थिति की विवेचना करते हैं। जैसाकि वैदिक साहित्य में कहा गया है *देहदेहिविभागोऽयं नेश्वरे विद्यते क्वचित्* भगवान् के शरीर तथा आत्मा में कभी कोई अन्तर नहीं होता। दूसरे शब्दों में, श्रीकृष्ण का शरीर नित्य, आध्यात्मिक, सर्वज्ञ तथा समस्त आनन्द का आगार है।

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय

यदा यदा वेदपथः पुराणः ।

बाध्येत पाषण्डपथैरसद्भि-

स्तदा भवान्सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

त्वया—तुम्हारे द्वारा; उदितः—कहा गया है; अयम्—यह; जगतः—ब्रह्माण्ड के; हिताय—लाभ के लिए; यदा यदा—जब जब; वेद—वैदिक शास्त्रों का; पथः—(धार्मिकता का) मार्ग; पुराणः—प्राचीन; बाध्येत—रोका जाता है; पाषण्ड—नास्तिकता का; पथैः—मार्ग का अनुसरण करने वालों के द्वारा; असद्भिः—दुष्ट पुरुष द्वारा; तदा—तब; भवान्—आप; सत्त्व-गुणम्—शुद्ध सतो गुण; बिभर्ति—धारण करते हैं।

आपने समस्त विश्व के लाभ के लिए प्रारम्भ में वेदों के प्राचीन धार्मिक पथ की व्याख्या की थी। जब भी दुष्ट व्यक्तियों द्वारा नास्तिकता का मार्ग ग्रहण करने के फलस्वरूप यह पथ अवरुद्ध होता है, तो आप दिव्य सतो गुण से युक्त कोई न कोई रूप में अवतरित होते हैं।

स त्वम्प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः

स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ।

अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांश-

राजाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—तुम; प्रभो—हे स्वामी; अद्य—अब; वसुदेव-गृहे—वसुदेव के घर में; अवतीर्णः—अवतरित; स्व—अपने ही; अंशेन—प्रत्यक्ष अंश (बलराम); भ्रम्—भार; अपनेतुम्—हटाने के लिए; इह—यहाँ; असि—हो; भूमेः—पृथ्वी का; अक्षौहिणी—सेनाओं का; शत—सौ; वधेन—मारकर; सुर-इतर—देवताओं के विपक्षियों का; अंश—अंश रूप; राजाम्—राजाओं का; अमुष्य—इसका; च—तथा; कुलस्य—कुल का (यदुकुल का); यशः—ख्याति; वितन्वन्—विस्तार करते हुए।

हे प्रभु, आप वही परम पुरुष हैं और अब आप अपने अंश समेत वसुदेव के घर में प्रकट हुए हैं। आपने देवताओं के शत्रुओं के अंश रूप राजाओं के नेतृत्व वाली हजारों सेनाओं का वध करके पृथ्वी का भार हटाने तथा हमारे कुल की ख्याति का विस्तार करने के लिए ऐसा किया है।

तात्पर्य : सुरेतरांशराजाम् पद सूचित करता है कि कृष्ण ने जिन असुर राजाओं का वध किया वे

वास्तव में देवताओं के शत्रुओं के अंश या अवतार थे। इस तथ्य की विस्तृत व्याख्या महाभारत में की गई है, जिससे असुर राजाओं की विशिष्ट पहचान उद्घाटित होती है।

अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा

यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ।

यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनाति

स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; ईश—हे भगवन्; नः—हमारे; वसतयः—निवासस्थान; खलु—निस्सन्देह; भूरि—अत्यन्त; भागाः—भाग्यशाली; यः—जो; सर्व—देव—परमेश्वर; पितृ—पूर्वज, पितरगण; भूत—सारे जीव; नृ—मनुष्य; देव—तथा देवता; मूर्तिः—देहधारी; यत्—जिसके; पाद—पाँवों को; शौच—धोने वाला है; सलिलम्—जल (गंगाजल); त्रि—जगत्—तीनों लोक; पुनाति—पवित्र करता है; सः—वह; त्वम्—तुम; जगत्—ब्रह्माण्ड के; गुरुः—गुरु; अधोक्षज—भौतिक इन्द्रियों के क्षेत्र से परे रहने वाले, इन्द्रियातीत; याः—जो; प्रविष्टः—प्रविष्ट होकर।

हे प्रभु, आज मेरा घर अत्यन्त भाग्यशाली बन गया है क्योंकि आपने इसमें प्रवेश किया है। परम सत्य के रूप में आप पितरों, सामान्य प्राणियों, मनुष्यों एवं देवताओं की मूर्ति हैं और जिस जल से आपके पाँवों को प्रक्षालित किया गया है, वह तीनों लोकों को पवित्र बनाता है। निस्सन्देह हे इन्द्रियातीत, आप ब्रह्माण्ड के आध्यात्मिक गुरु हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने अक्रूर की भावनाओं का निम्नलिखित शब्दों में बहुत ही सुन्दर विश्लेषण किया है—

अक्रूर ने कहा: “हे प्रभु! यद्यपि मैं गृहस्थ हूँ किन्तु आज यह मेरा घर उन जंगलों से भी अधिक पवित्र बन गया है जहाँ मुनिगण तपस्या करते हैं। ऐसा क्यों? वह केवल इसलिए क्योंकि आपने मेरे घर में प्रवेश किया है। निस्सन्देह आप उन देवों के साक्षात् रूप हैं, जो गृहस्थों द्वारा घर में जीवों के प्रति न चाहने पर भी की गई हिंसा का प्रायश्चित्त करने के लिए प्रतिदिन सम्पन्न किये जाने वाले पाँच यज्ञों के अधिष्ठाता हैं। आप इन सृष्टियों की पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक सत्य हैं और अब आप मेरे घर पधारे हैं।”

गृहस्थ के लिए जिन पाँच यज्ञों के किये जाने का आदेश है वे हैं—१) वेदाध्ययन द्वारा ब्रह्म का यज्ञ २) पितृ-यज्ञ ३) अपने भोजन का एक अंश अलग रखने से समस्त जीव-यज्ञ ४) आतिथ्य द्वारा मनुष्य-यज्ञ ५) अग्नि-हव्य द्वारा देव-यज्ञ।

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्
 भक्तप्रियादृत्तगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।
 सर्वान्ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा-
 नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; पण्डितः—विद्वान्; त्वत्—आपसे बढ़कर; अपरम्—दूसरा; शरणम्—शरण के लिए; समीयात्—जाये; भक्त—अपने भक्त के लिए; प्रियात्—स्नेहिल; ऋत्—सदैव सच; गिरः—शब्द; सुहृदः—शुभचिन्तक; कृत-ज्ञात्—कृतज्ञ; सर्वान्—सभी; ददाति—आप देते हैं; सुहृदः—अपने शुभचिन्तक भक्तों को; भजतः—आपकी पूजा करने वाले; अभिकामान्—इच्छाएँ; आत्मानम्—अपने आपको; अपि—भी; उपचय—वृद्धि; अपचयौ—या ह्रास; न—कभी नहीं; यस्य—जिसका ।

जब आप अपने भक्तों के प्रति इतने स्नेहिल, कृतज्ञ तथा सच्चे शुभचिन्तक हैं, तो फिर कौन ऐसा विद्वान् होगा जो आपको छोड़कर किसी दूसरे के पास जायेगा? जो लोग सच्चे साख्यभाव से आपकी पूजा करते हैं उन्हें आप मुँहमाँगा वरदान, यहाँ तक कि अपने आपको भी, दे देते हैं फिर भी आपमें न तो वृद्धि होती है न ह्रास ।

तात्पर्य : इस श्लोक में भगवान् तथा उनके भक्त—दोनों को ही सुहृदः (शुभचिन्तक) कहा गया है । भगवान् अपने भक्त के शुभचिन्तक हैं और भक्त भी भगवान् के लिए सारे सुख की प्रेमपूर्वक कामना करता है । इस जगत में भी अत्यधिक प्रेम से कभी कभी अनावश्यक चिन्ता उत्पन्न होती है । उदाहरणार्थ, हम प्रायः देखते हैं कि माता द्वारा अपनी प्रौढ़ सन्तान के प्रति यह चिन्ता कि वह वास्तव में किसी आपत्ति में होगा न्यायसंगत नहीं है । प्रौढ़ सन्तान धनी, दक्ष तथा स्वस्थ हो तो भी माता की प्रेममयी चिन्ता बनी रहती है । इसी प्रकार शुद्ध-भक्त कृष्ण के प्रति सदैव प्रेममयी चिन्ता का अनुभव करता है जैसाकि माता यशोदा के उदाहरण से स्पष्ट है, जो कृष्ण के प्रति अपने सुन्दर पुत्र के रूप में ही चिन्तित रहती हैं ।

भगवान् कृष्ण ने अक्रूर से वादा किया था कि कंस का वध करने के बाद वे उनके घर जायेंगे और अब भगवान् वही वादा निभाने आये थे । अक्रूर इसे जानते हैं इसीलिए भगवान् की महिमा का गायन ऋत्तगिरः (वचन के प्रति सच्चा) कहकर करते हैं । भक्त द्वारा भगवान् की जो भी थोड़ी-बहुत पूजा होती है उसके लिए भगवान् उसके कृतज्ञ रहते हैं । भक्त भले ही भूल जाय किन्तु भगवान् उसे नहीं भूलते ।

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो
योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ।
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेह-
देहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्य से; जनार्दन—हे कृष्ण; भवान्—आप; इह—यहाँ; नः—हमारे द्वारा; प्रतीतः—अनुभवगम्य; योग-ईश्वरैः—योग के स्वामियों द्वारा; अपि—भी; दुराप-गतिः—लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन; सुर-ईशैः—तथा देवताओं के शासकों द्वारा; छिन्धि—काट दें; आशु—तुरन्त; नः—हमारे; सुत—सन्तान; कलत्र—पत्नी; धन—सम्पत्ति; आप्त—योग्य मित्र; गेह—घर; देह—शरीर; आदि—इत्यादि; मोह—मोह की; रशनाम्—रस्सियों को; भवदीय—अपनी; मायाम्—माया को ।

हे जनार्दन, हमारे बड़े भाग्य हैं कि हमें आपके दर्शन हो रहे हैं क्योंकि बड़े बड़े योगेश्वर तथा अग्रणी देवता भी इस लक्ष्य को बड़ी मुश्किल से प्राप्त कर पाते हैं। कृपया शीघ्र ही सन्तान, पत्नी, धन, समृद्ध मित्र, घर तथा शरीर के प्रति हमारी मायामयी आसक्ति की रस्सियों को काट दें। ऐसी सारी आसक्ति आपकी भ्रामक एवं भौतिक माया का ही प्रभाव है।

इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान्हरिः ।
अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः सम्मोहयन्निव ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अर्चितः—पूजित; संस्तुतः—अत्यधिक स्तुति किये गये; च—तथा; भक्तेन—अपने भक्त द्वारा; भगवान्—भगवान्; हरिः—कृष्ण; अक्रूरम्—अक्रूर से; स-स्मितम्—हँसते हुए; प्राह—बोले; गीर्भिः—वाणी से; सम्मोहयन्—पूरी तरह मोहित करते हुए; इव—प्रायः ।

[शुक्रदेव गोस्वामी ने कहा] : अपने भक्त द्वारा इस तरह पूजित तथा संस्तुत होकर भगवान् हरि ने हँसते हुए अपनी वाणी से अक्रूर को पूर्णतया मोहित करके सम्बोधित किया।

श्रीभगवानुवाच

त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा ।
वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; त्वम्—तुम; नः—हमारे; गुरुः—गुरु; पितृव्यः—चाचा (ताऊ); च—तथा; श्लाघ्यः—प्रशंसनीय; बन्धुः—मित्र; च—तथा; नित्यदा—सदैव; वयम्—हम; तु—तो; रक्ष्याः—रक्षा किये जाने के लिए; पोष्याः—पालन किये जाने के लिए; च—तथा; अनुकम्याः—दया दिखाये जाने के लिए; प्रजाः—आश्रित; हि—निस्सन्देह; वः—आपके ।

भगवान् ने कहा : आप हमारे गुरु, चाचा तथा श्लाघ्य मित्र हैं और हम आपके पुत्रवत् हैं; अतः हम सदैव आपकी रक्षा, पालन तथा दया पर आश्रित हैं।

भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ।

श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

भवत्-विधा: —आपके समान; महा-भागा: —अत्यन्त विख्यात; निषेव्या: —सेवा किये जाने के योग्य; अर्ह—पूज्य; सत्-
तमा: —अतीव साधु; श्रेय: —सर्वोच्च शुभ, मंगल; कामै: —चाहने वाले; नृभि: —पुरुषों के द्वारा; नित्यम्—सदैव; देव: —
देवतागण; स्व-अर्था: —निजी लाभ के लिए; न—ऐसे नहीं; साधव: —साधु भक्तगण ।

आप जैसे महात्मा ही सेवा के असली पात्र हैं और जीवन में सर्वोच्च मंगल के इच्छुक लोगों के लिए अत्यन्त पूज्य महाजन हैं। देवतागण सामान्यतया अपने स्वार्थों में लगे रहते हैं किन्तु साधु-भक्त ऐसे नहीं होते।

तात्पर्य : देवतागण भले ही भौतिक लाभ प्रदान कर दें किन्तु भगवान् के साधु-भक्तों में जीवन की असली सिद्धि कृष्णभावनामृत प्रदान करने की शक्ति होती है। इस तरह कृष्ण द्वारा अपने चाचा अक्रूर के प्रति अपनाए गए आदर-भाव की पुष्टि होती है।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।

ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अप्-मयानि—जल से बना; तीर्थानि—पवित्र स्थान; न—ऐसा नहीं है; देवा: —अर्चाविग्रह; मृत्—
मिट्टी; शिला—तथा पत्थर से; मया: —निर्मित; ते—वे; पुनन्ति—पवित्र बनाते हैं; उरु-कालेन—दीर्घकाल के बाद; दर्शनात्—
दर्शन से; एव—केवल; साधव: —साधु-सन्त ।

इससे कोई इनकार नहीं करेगा कि अनेक तीर्थस्थानों में पवित्र नदियाँ होती हैं या कि देवताओं के अर्चाविग्रह मिट्टी तथा पत्थर से बने होते हैं। किन्तु ये सब दीर्घकाल के बाद ही आत्मा को पवित्र करते हैं जबकि सन्त-पुरुषों के दर्शनमात्र से आत्मा पवित्र हो जाती है।

स भवान्सुहृदां वै नः श्रेयान्श्रेयश्चिकीर्षया ।

जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

स: —वह व्यक्ति; भवान्—आप; सुहृदाम्—शुभचिन्तकों का; वै—निश्चय ही; नः—हमारा; श्रेयान्—सर्वश्रेष्ठ में से; श्रेय: —
मंगल के लिए; चिकीर्षया—नियोजित करने की इच्छा से; जिज्ञासा—पूछताछ के; अर्थम्—लिए; पाण्डवानाम्—पाण्डु के पुत्रों
की; गच्छस्व—जाओ; त्वम्—तुम; गज-आह्वयम्—गजाह्वय (कुरुवंश की राजधानी, हस्तिनापुर) ।

दरअसल आप हमारे सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं अतः आप हस्तिनापुर जाँय और पाण्डवों के शुभचिन्तक के रूप में पता लगायें कि वे कैसे हैं।

तात्पर्य : संस्कृत में आज्ञार्थ 'जाओ' शब्द 'गच्छस्व' या 'गच्छ' से अभिव्यक्त किया जा सकता

है। गच्छस्व में जो स्व लगा है, वह सम्बोधन कारक का द्योतक है और अपनत्व का सूचक है। यह कृष्ण तथा उनके चाचा अक्रूर के घनिष्ठ सम्बन्ध के लिए प्रयुक्त है।

पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ।
आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

पितरि—पिता के; उपरते—देहान्त होने पर; बालाः—छोटे बालक; सह—साथ; मात्रा—माता के; सु—अत्यन्त; दुःखिताः—दुखी; आनीताः—लाये गये; स्व—अपने; पुरम्—राजधानी में; राज्ञा—राजा द्वारा; वसन्ते—रह रहे हैं; इति—इस प्रकार; शुश्रुम—हमने सुना है।

हमने सुना है कि अपने पिता के दिवंगत हो जाने के बाद बालक पाण्डवों को उनकी दुखी माता समेत राजा धृतराष्ट्र द्वारा राजधानी में लाये गए थे और अब वे वहीं रह रहे हैं।

तेषु राजाम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ।
समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धृक् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तेषु—उनके प्रति; राजा—राजा (धृतराष्ट्र); अम्बिका—अम्बिका का; पुत्रः—पुत्र; भ्रातृ—अपने भाई के; पुत्रेषु—पुत्रों के प्रति; दीन-धीः—दुष्ट बुद्धि; समः—समभाव; न वर्तते—नहीं बरतता; नूनम्—निश्चय ही; दुः—दुष्ट; पुत्र—अपने पुत्रों का; वश-गः—अधीन; अन्ध—अन्धा; दृक्—दृष्टि।

असल में अम्बिका का दुर्बल चित्त वाला पुत्र धृतराष्ट्र अपने दुष्ट पुत्रों के वश में आ चुका है अतएव वह अन्धा राजा अपने भाई के पुत्रों के साथ ठीक व्यवहार नहीं कर रहा है।

गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ।
विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

गच्छ—जाओ; जानीहि—पता लगाओ; तत्—उस (धृतराष्ट्र) की; वृत्तम्—करतूत; अधुना—इस समय; साधु—अच्छ; असाधु—बुरा; वा—अथवा; विज्ञाय—जान कर; तत्—ऐसी; विधास्यामः—हम व्यवस्था करेंगे; यथा—जिससे; शम्—लाभ; सुहृदाम्—हमारे प्रियजनों का; भवेत्—हो सके।

जाइये और देखिये कि धृतराष्ट्र ठीक से कार्य कर रहा है या नहीं। पता लग जाने पर हम अपने प्रिय मित्रों की सहायता करने की आवश्यक व्यवस्था करेंगे।

इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः ।
सङ्कर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों से; अकूरम्—अकूर को; समादिश्य—आदेश देकर; भगवन्—भगवान्; हरिः ईश्वरः—भगवान् हरिः; संकृषण—बलराम; उद्धवाभ्याम्—तथा उद्धव के साथ; वै—निस्सन्देह; ततः—तब; स्व—अपने; भवनम्—घर; ययौ—चले गये।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] : इस प्रकार से अकूर को पूरी तरह से आदेश देकर संकृषण एवं उद्धव के साथ भगवान् हरि अपने घर लौट आये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत “कृष्ण द्वारा अपने भक्तों की तुष्टि” नामक अड़तालीसवें अध्याय के श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।